International Journal of Sociology and Humanities

ISSN Print: 2664-8679
ISSN Online: 2664-8687
Impact Factor: RJIF 8
IJSH 2024; 6(1): 107-112
www.sociologyjournal.net
Received: 18-02-2024
Accepted: 21-03-2024

प्रभाकर सिंह
शोध छात्र, मानव विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, भारत

डॉ. प्रशान्त खत्री
सहायक आचार्य, मानव विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
प्रभाकर सिंह
शोध छात्र, मानव विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, भारत

आपदा एवं आजीविका के अध्ययन का अवधारणात्मक स्वरूप

प्रभाकर सिंह, डॉ. प्रशान्त खत्री

सारांश
प्रस्तुत शोध पत्र शोधार्थी के शोधप्रबन्ध ''आपदा एवं आजीविका : पूर्वी उत्तर प्रदेश के बलिया जनपद के काजीपुर गाँव में बाद प्रसंग का एक अध्ययन'' के अध्याय–एक की प्रत्यक्ष निष्पत्ति है। जहाँ का एक अध्ययन'' के अध्याय–एक की प्रत्यक्ष निष्पत्ति है। जहाँ शोधार्थी ने अपने अध्ययन के अवधारणात्मक पहलू का निरूपण किया है। जहाँ शोधार्थी ने आजीविका एवं आपदा का अर्थ, मानवविज्ञान में आपदा के अध्ययन का सम्बन्ध एवं विकास, आपदा के वैज्ञानिक अध्ययन हेतु दृष्टिकोण, आपदा के सामाजिक प्रभाव का अवधाणात्मक पक्ष, व्यवहारिक पक्ष एवं सामाजिक असुरक्षा के कारकों का विश्लेषण कार्य कारण रूप में किया गया है।

कूटशब्दः आपदा, आजीविका, होमियोस्टैटिक, आपदा एजेंट, आपदा संस्कृति, भेद्यता, लचीलापन, सामाजिक–जनसंख्यकीय, सामाजिक आर्थिकी

प्रस्तावना
मानव जीवन प्राकृतिक आपदाओं का ही परिणाम है। महाविस्फोट सिद्धांत के अनुसार लगभग 4.5 अरब वर्ष पहले तारों की आपस में टकराहट के कारण ग्रह नक्षत्रों का निर्माण हुआ जिसमें पृथ्वी का जन्म एक महत्वपूर्ण घटना है। पृथ्वी के चुम्बकत्व, भौतिक, रासायनिक परिवर्तनो के परिणाम स्वरूप पादप जगत और जन्तु जगत अस्तित्व में आयें।
मनुष्य के जन्म से पूर्व जन्तु जगत की जीवनशैली प्राकृतिक परिवर्तनो के आधार पर संचालित होती थी जबकि मनुष्य के जन्म के बाद संवेदनशील जीवन शैली का जन्म हुआ और पर्यावरण में घटित होने वाली प्राकृतिक घटनाओं से वह प्रभावित होने लगा और उसे प्रभावित भी करने लगा। प्रकृति और मनुष्य के इस पक्ष को गहराई से जानने की विज्ञाषा ने कालक्रम की दृष्टि में जादू, धर्म और विज्ञान जैसी संस्थाओं को जन्म दिया (जेम्स फ्रेजर–1912)।
मानव की कल्पना शक्ति ने ब्रह्मण्ड और जीवन के सत्य को जानने के लिए अनेक अनुशासन से भावना, अनुभूति, तर्क, विवेक, प्रयोग और अनुसंधान को आधार बनाकर ज्ञान का सृजन किया। जिसके क्रमिक विकास के रूप में आजीविका और आपदा भौगोलिक घटनाओं से प्रभावित मानव जीवन को जानने की एक निश्चित भौगोलिक शब्दावली है।
ऐसी प्राकृतिक–भौगोलिक घटनाएँ जिससे मानव समाज या जनसंख्या को हानि होती है उसे आपदा कहते है। प्रत्येक मनुष्य जीवित रहने के लिए अपने देश, समाज, परिवेश में आर्थिक क्रियाएँ करता है। उन्ही निश्चित आर्थिक क्रियाकलाप को उस व्यक्ति, जाति, वर्ग, समाज की आजीविका कहा जाता है। मानव के आस–पास घटित होने वाली प्राकृतिक तथा मानवजनित घटनाएँ जैसे–भूकम्प, ज्वालामुखी, सूनामी, अतिवर्षा, बाढ़, शीत लहर, लू, जनसंख्या विस्फोट, महामारी, प्रदूषण इत्यादि जब मानव जीवन को नाकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। तो उसे ही आपदा कहते है। अनेक विद्वानों ने आपदा को वर्गीकृत करने के लिए अनेक आधार बनाएँ है जो निम्न है–

- उत्पत्ति से सम्बन्धित कारको के आधार पर।
- आपदाओं की व्यापकता एवं आयाम के आधार पर।
- आपदाओं के घटित होने की दर के आधार पर।
- अन्तर्राष्ट्रीय समुदायों की अपेक्षाओं के आधार पर।

उपरोक्त आधारों पर आपदा को विद्वानों ने कई प्रकार का बताया है, जो निम्न है–
मूल रूप से आपदा को प्राकृतिक और मानव जनित वर्गो में विभक्त किया गया है प्राकृतिक आपदा के अर्न्तगत पुनः ग्रहीय, प्रथ्त्येतर प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है। जहाँ ग्रहीय आपदा को दो रूपों में देखा जाता है प्रथम विवर्तनिक या अन्तर्जात आपदा, द्वितीय वायुमण्डलीय या बर्हिजात आपदा। आपदा के अर्न्तगत ज्वालामुखी, भूकम्प, भूस्खलन की घटनाये आती है। वही बर्हिजात के अर्न्तगत इसके दो रूप मिलते है जिसमें एकल और संचयी आपदायें है, एकल आपदा के अर्न्तगत चक्रवात,

दैवीय तड़ित, उपलवृष्टि की घटनाएँ आति है वही संचयी आपदा के अर्न्तगत बाढ़, सूखा, शीत लहर, ताप लहर इत्यादि घटनायें आती है। मानव जनित आपदा को तीन रूपों में वर्गीकृत किया गया है जहाँ भौतिक, रसायनिक, जीविय रूप की आपदायें है। भौतिक रूप के अर्न्तगत भूकम्प, भूस्खलन, मृदा अपरदन की प्राकृतिक घटनायें होती है वही रसायनिक रूप में विशक्त रसायन और नाभिकीय रसायन की घटनायें शामिल होते है। जीविय आपदा घटना के रूप में जनसंख्या विस्फोट कुपोषण महामारी, जन्तु एवं पादप रोग इत्यादि घटनायें विद्वानों द्वारा वर्गीकृत की गयी है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में आपदा भौगोलिक स्वरूप में सकारात्मक और सामाजिक रूप में नकारात्मक प्रकृति को दर्शाती है। क्योंकि भारतीय जनजीवन में जाति, धर्म, वर्ग, समुदाय के आर्थिक जीवन में विचलित करने वाली असमानता है। जिसका प्रभाव संकट के समय अत्यधिक दिखाई पड़ता है। संयुक्त राष्ट्र संघ के आपदा राहत संयोजक (यू. एन. डी. आर. डी.) के रिपोर्ट में कहा गया की 90 प्रतिशत आपदा विकासशील देश में आती हैं। विकासशील देश आपदाओं के साथ ही रहते है। क्योंकि प्राकृतिक आपदाओं के कारण यहाँ अत्यधिक हानि होती है। जिसको पूरा करने के लिए धन खर्च हो जाता है और विकास परियोजनायें प्रभावित होती है (यम. हाशिजुमे–1989)।

18वीं से 21 वी सदी के प्रारम्भिक दो दशको में भारत में आयी आपदा को निम्न तालिका से स्पष्ट किया जा सकता है–

तलिका 1रू

आपदा	वर्ष	देश/स्थान	मृत्यु
भूकम्प/चक्रवाद	1737	भारत कल्पसूत्र	3 लाख
अकाल	1770	भारत बंगाल	10 लाख
चक्रवात	1839	भारत	3 लाख
चक्रवात	1876	भारत बग्लादेश	2 लाख
भुकम्प	2001	भारत गुजरात	50 हजार से 1 लाख
सूनानी	2004	भारत	
चक्रवात	2012	भारत तमिलनाडू	
बाढ़, भूस्खलन	2013	भारत उत्तराखण्ड	

स्रोतः MHASHIZUME : 1987 : the present state of natural hazard identification and international cooperation, I A S and N D R, ITC, E.N.

आपदा पर अध्ययन करने वाले विद्वानो ने इसे परिभाषित करने का भी प्रयास किया है जहाँ पेरी (2005) का मानना है कि आपदा एक स्वीकृत धारणा है। जिसकी परिभाषा अलग–अलग लोगो के बीच अलग–अलग होती है। आपदा को एक सामाजिक घटना के रूप में देखने की प्रथम प्रयास चार्ल्स ई. फ्रिट्ज 1961 में किया जहाँ वे कहते है कि ''मानव जीवन, भौतिक संपत्ति और सामान्य सामाजिक दिनचर्या के विघटन के मामले में हुई हानि की भयावहता ही आपदा है''। इस परिभाषा में आपदा के बाद की स्थिति पर जोर दिया गया जहाँ व्यक्ति घटना से प्रभावित है उस स्थिति को आपदा अध्ययन का केन्द्र बनाया गया है। यह परिभाषा 1980 के दशक तक अत्यधिक प्रभावी रही।

पोरीफिरेव (1998) के अनुसार आपदा वह स्थिति या घटना है जो व्यक्ति के दिन प्रतिदिन (प्राकृतिक दिनचर्चा) के कार्यो में बाधा उत्पन्न कर देती है। जहाँ सामाजिक व्यवस्था अस्थिर हो जाती है और सामान्य अवस्था में आने के लिए बाहरी हस्तक्षेप की आवश्यकता होती है।

इस प्रकार देखा जाये तो यह पाया जाता है कि आपदा की समझ में उत्तरोत्तर परिर्वतन हुआ है। प्रारम्भिक अवस्था में दैवीय प्रकोप समझा जाता रहा है। 1950 के बाद से आपदा के संदर्भ में यूनाइटेड नेशन्स डिजास्टर रिलीव आर्गेनाइजेशन (UNDRO) ने यह समझ व्यक्त की कि आपदा समय तथा स्थान के सापेक्ष एक ऐसी घटना है जिसमें समाज तथा समाज के सदस्यों का विकास बाधित होता है और सामाजिक कार्यो में अवरोध होता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में आपदा को देखा जाये तो, भारत का समुद्र से घिरा होना, नदियों का जाल, मानसून की अनिश्चितता, शहरीकरण, अद्योगीकरण का तेज विकास और जनसंख्या विस्फोट आदि आपदा को जन्म देती है जिससे मानव जीवन पूरी तरह प्रभावित होता है। और सबसे ज्यादा प्रभाव व्यक्ति की आजीविका और उसके स्रोतों पर पड़ता है। जहाँ लोगों का पूरा जीवन आपदाओं के ही प्रभावों से लड़ने में ही खत्म हो जाता है।

आजीविका

मनुष्य का पृथ्वी पर जब से जन्म हुआ तब से वह जीवन यापन के लिए प्रकृति से संघर्ष करता रहा है जिसके परिणाम स्वरूप स्थान, काल और पारिस्थिति एवं तकनीकी के परिप्रेक्ष्य में अनेक संस्थाओं एवं प्रणालियों का जन्म हुआ। जो मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम बनी। वे आवश्कताएँ ही मानव को कार्य कने के लिए प्रेरित करती है। जिसको पूरा करने के लिए मानव जिस उपकरण का निर्माण करता है उसे संस्कृति कहते है। (मैलिनॉस्की–1944) सामाजिक–सांस्कृतिक विद्वानों ने मानव की इस विलक्षणता को ही आजीविका कहा है। जहाँ आवश्यकता, संसाधन, तकनीक, क्रिया एक साथ मिलकर समाज में मनुष्य के आजीविका रूपी स्वरूप को प्रकट करते है।

वर्तमान युग में मानव के जीवन का आर्थिक पक्ष आजीविका का द्योतक है। जो व्यवस्था के प्रत्येक स्तर पर समानता एवं भिन्नता को प्रदर्शित करती है। उदाहरण स्वरूप शहरी और ग्रामीण जीवन के आर्थिक पक्ष को देखा जाये तो आजीविका की प्रकृति और स्वरूप में बहुत भिन्नताएँ है। जहाँ शहरी जीवन में व्यक्ति उद्योग, कारखानो और आधुनिक व्यवस्था (रेल, डाक, अस्पताल, कोर्ट–कचेहरी, वेतनभोगी रोजगार) इत्यादि से जुडकर आजीविका चलाता है। वही ग्रामीण जीवन में व्यक्ति परम्परागत पेशा, कृषक मजदूरी, दिहाडी मजदूरी, जीव जन्तुपालन, मछलीपालन, जल, जलपात की दूकान, ईट–भट्टों पर मजदूरी, नौकर, स्वरोजगार, सब्जी बेचता, किराना दूकान इत्यादि करके जीवन यापन करता है।

इसप्रकार आजीविका व्यक्ति के जीवन को सबसे महत्वपूर्ण आर्थिक घटक है जो उत्पाद, उपभोग, बचत, विनियम, आय–व्यय की अवधारणा से परिभाषित होती है।

आजीविका के सन्दर्भ में अनेक सामाजिक–आर्थिक विद्वानो ने अध्ययन किया है और विचार प्रस्तुत किये है–चेम्बर्स एंड कॉनवे–1991 के अध्ययन में लोगो की क्षमता, जीवन यापन के साधन, जिसमें भोजन, आय–व्यय इत्यादि को शामिल किया है वो कहते है ''आजीविका एक प्रणाली है जिसमें क्षमताएँ सम्पत्तियों और जीवनयापन के लिए आवश्यक गतिविधियाँ होती है'' ।–इटालियन

एलिस (2000) ने विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से आजिविका को परिभाषित किया है जिसमें संपत्ति, गतिविधियाँ और सुलभता, मध्यस्थता शामिल है जहाँ सामूहिक रूप से घरो के रहन–सहन का निर्धारण होता है। अर्थात् आजीविका से तापर्य यह है कि संपत्ति आय सृजन के लिए गतिविधियों के माध्यम से व्यक्ति जीवनयापन करता है।

आजीविका को विकास केन्द्रीत दृष्टिकोण से परिभाषित करने के लिए 1990 के दशक के बाद विश्वस्तर पर अनेक देशो ने प्रयास किया परिणाम स्वरूप कई संगठन अस्तित्व में आयें जैसे डिपार्टमेंट फॉर इंटरनेशनल डेवलमेण्ट (DFID), ब्रिटिश स्टेट डेवेलपमेंट को ऑपरेशन ऐजेसी भारत में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM), भारतीय ग्रामीण आजीविका फाउण्डेशन (BRLF-1860) जो 3 सितम्बर 2013 को सरकारी साझेदार हो गया। भारतीय शहरी आजीविक मिशन, ऐसे ही अनेको संस्थाएँ, स्वयं सहायता समूह आजीविका के विकास के

लिए अस्तित्व में आये जिनका उद्देश्य लोगों की गरीबी को दूर करना, स्थायी आजीविका प्रदान करना, हर प्रकार के श्रमिकों को अच्छे जीवनयापन के लिए अवसर प्रदान करता था।
उपरोक्त सभी राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्था एवं संगठन लोगों के लिए विपत्ति या आपदा की स्थिति में भी उनके जीवन को बचाने, विकसित करने अथवा उनकी आजीविका के उत्थान एवं संर्वधन में सतत प्रयासरत् रहते है।
उपरोक्त तथ्य सामान्य रूप से आजीविका और आपदा की समझ पर प्रकाश डालते है।

मानव विज्ञान एवं प्राकृतिक आपदा

मानवविज्ञान में संघातितृत्तों (एथनोग्राफी) के अध्ययन से पता चलता है कि ऐसे समाज जो घोर प्राकृतिक संकटो से जुझते रहे है उनसे मानवाविज्ञानियों का गहरा सम्बन्ध रहा है। जैसे–टिकोपिया, नवाजो, डोबू, लोजी, न्यूर, ट्रौबियन्ड द्वीपवासी, प्रशान्त महासागर के द्वीपो में निवास करने वाली जनजातियों के जीवन को किसी न किसी आपदा से ग्रस्त दिखाया गया है।
सन् 1950 तक अनेक मानवशास्त्रियों ने प्राकृतिक आपदाओं और उनके सामाजिक प्रभावों को ग्रन्थ रूप देना प्रारम्भ कर दिया था। 20वी शताब्दी के 7 वें दशक तक आते–आते एक शोध श्रृंखला दिखाई पड़ती है। जिसमें अफ्रीकी देशों में सूखे के कारण परेशान मानव, चारागाह और मिश्रित कृषि करने वाले लोगो की समस्याएँ उभर कर सामने आती है किन्तु पूरी तरह से यह अध्ययन आपदा के प्रभावों को प्रदर्शित नही करता है। भारत में आपदा पर मानव शास्त्रीय अध्ययन जोशी और मीट 2002, 2006 को छोड़कर और नही दिखाई देते है।
मानववैज्ञानिक दृष्टि में प्रकृतिक आपदा का स्वरूप सूखा, बाढ़ ज्वालामूखी विस्फोट, भूकम्प, प्लेट विर्वतन, सूनामी, अतिवर्षा इत्यादि का है जो मानव जीवन को गहराई से प्रभावित करती है, वैश्विकस्तर पर मानव वैज्ञानिकों ने इन घटनाओं के प्रभाव का अध्ययन किया है उदहरण स्वरूप अफ्रीकी गाँवो के अध्ययन में गीत्स (1973), हैकेनवर्ग (1964), ग्लुकमैन (1941), स्कडर (1962) का प्रमुख है जहाँ सर्वाधिक प्रसंग सूखा (अकाल) का है। बाढ़ और पाले का वर्णन बहुत कम किया गया है।
शीट्स (1971) का मानना है कि ज्वालामुखी के खतरे और प्रभाव का विश्लेषण मानवशास्त्र में पुरातत्वविदो के कार्यों से ही प्राप्त होता है। जबकि भूकम्प के सन्दर्भ में डेविस (1971) के अलास्का पर किये गये कार्य और ओलिवर–स्मिथ (1973द्ध के पेरू प्रलय पर किये गये कार्यो को महत्वपूर्ण माना गया है। टोरी (1979) ने प्लेट विवर्तन की घटनाओं और उसके समाजशास्त्रीय निष्कर्षो के बारे में सैद्धांतिक योगदान दिया है वहीं वासेल (1956) और एंडरसन (1968) ने सभी प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं का सामाजिक मनोवैज्ञानिक सिद्धांत प्रस्तुत किया है। जो मानव विज्ञान में अतिमहत्व के है।
अतः मानव विज्ञान में आपदा पर सैद्धांतिक निर्माण अभी प्रारम्भिक अवस्था में है क्योंकि मानवविज्ञानियों के अध्ययन का झूकाव जनजाति और कृषक समाज पर ज्यादा रहा है किन्तु पुर्ननिर्माण के समय में विद्वानो का ध्यान इधर काफी तेजी से आकृष्ठ हुआ है।

आपदा और आजीविका के अध्ययन के दृष्टिकोण

मानवविज्ञान में आपदा और आजीविका के अर्न्तसम्बन्धों के अध्ययन में मुख्यतः दो प्रकार के दृष्टिकोण दिखाई पड़ते है–

1. होमियोस्टैतिक दृष्टिकोण
2. विकासात्मक दृष्टिकोण

होमियोस्टैटिक दृष्टिकोण एक परंपरागत सांस्कृतिक दृष्टिकोण है जहाँ यह देखा जाता है कि जब खतरों के प्रभाव के मुल्यांकन की बात होती है तो प्रत्येक समाज में आपदा या खतरों से संघर्ष करने की क्षमता होती है जैसे आदिवासी समाज की अपनी पकड़, क्षमता, कठोर एवं मनमौजी परिस्थितियों में स्थिरता बनाये रखने की प्रवृत्ति सामने आती है। अपने परिस्थितियों के प्रति स्थिर बने रहने की क्षमता ही होमियोस्टैटिक दृष्टिकोण कहलाता है।
विकासात्मक दृष्टिकोण के अंतर्गत सामाजिक स्थिरता को बाधित करके परिवर्तन को बढ़ावा देती है अर्थात् यह अध्ययन के आधुनिकरण के दबावों से प्रभावित समाजों से सम्बन्धित है। जहाँ 'आपदा एजेंट' की पहचान परस्पर क्रिया करने वाली शक्तियों के रूप में होती है। जो सामाजिक स्थिरता को बाधित करती है।
उपरोक्त दोनो दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर एक मानवशास्त्री आपदा से ग्रस्त समाज का अध्ययन करता है। जहाँ होमियोस्टैटिक दृष्टिकोण समाज के अंदर भी क्षमता और विकासात्मक दृष्टिकोण समाज के बाध्य योग्यताओ को समन्वित करता है।

मानवशास्त्रीय दृष्टि का विकास

प्रिंस ने हैलिफैक्स बंदरगाह (1920) में युद्ध सामग्री विस्फोट में सामाजिक परिवर्तन के निहितार्थ का अध्ययन किया। समाज वैज्ञानियो में आपदाओं को अप्रत्याशित और चरम घटनाओं के रूप में देखा। ये आपदाओं को आदर्श से हटकर मानते थे और कहते थे इनसे उबरने के लिए आपदापूर्ण स्थिति में लौटना होगा। कम से कम दिखने जैसे घर और गिने जाने वाले जैसे जानवर समान के सन्दर्भ में। .
1950 से 1970 के दशक तक रूचियाँ आपदा की चेतावनी, प्रभाव और तत्काल परिणाम के चरणों में व्यक्तियों और संगठनों के व्यवहार पर केन्द्रित थी। जहाँ ऐतिहासिक और सामाजिक सांस्कृतिक पैर्टन को बहुत कम ध्यान में रखा गया था।
हेविट (1995) का मानना है कि 1980 के आस–पास एक नई स्थिति सामने आयी। आपदाओं और उनके कारण होने वाले खतरों का पुर्नमूल्यांकन किया गया और पर्यावरण के बुनियादी पुराने तत्वों के रूप में और महत्वूपर्ण रूप से उन घटनाओं के रूप में परिभाषित किया गया जो कुछ हद तक मनुष्य स्वयं निर्मित करते है।
शोधकर्ताओं ने यह भी ध्यान में रखना शुरू कर दिया की मानव प्रौद्योगिकी एक दो धारी तलवार है तुफान और भूकंप की भविष्य वाणी के साथ सुरक्षा उपायो को बढ़ावा देने के साथ–साथ आपदा के प्रति मानवीय संवेदना को भी बढ़ाया।
सामाजिक वैज्ञानिक आपदा शोधकर्ताओं ने महसूस किया की केवल मानव आस्तित्व के भौतिक पक्ष की खोज करके आपदाओं को समक्षा जा सकता है और न ही कम किया जा सकता है सामाजिक कारक भी प्रासंगिक है। इस कार्य–कारण ने ऐतिहासिकता को भी शामिल कर दिया जहाँ कहा गया कि आपदा लम्बे समय से उतना ही विकसित हुई जितना अचानक आये संकट से।
जैसे–जैसे शोधकर्ताओ ने उस ताने–बाने के बारे में अपनी समझ विकसित की है। जिससे प्राकृतिक और तकनीकी दोनो तरह की आपदा जानी जाती है। आपदा के अध्ययन के लिए मानवविज्ञान की सैद्धांतिक और पद्धतिगत प्रासंगिकता स्पष्ट हो गई है।
एक सामाजिक विज्ञान के रूप में मानवविज्ञान अपने वास्तविक मंच में उन तीन स्तरों को ध्यान में रखता है। जो आपदा में हस्ताक्षेप करते है। जो पर्यावरणीय, जैविक, और सामाजिक–सांस्कृतिक है। इस प्रकार मानवविज्ञान का मौलिक जाँच प्रारूप आपदा अध्ययन (टोरी 1979) द्वारा प्रस्तुत विश्लेषणात्मक आवश्कताओं से अच्छी तरह मेल खाता है, इसके अलावा विकासात्मक और तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य, मानवशास्त्रीय अनुसंधान, आपदा अनुसंधान की विशेष आवश्यकताओं से साथ जुडता है।
हाल के वर्षों में मानव विज्ञान ने आपदाओं के अध्ययन में महत्वपूर्ण विस्तार जोड़ा है कार्य प्रणाली के स्तर पर क्षेत्रकार्य में

आपदा के स्वरूप, अभिव्यक्ति और सूक्ष्म जातीय सामाजिक संगठनात्मक बदलावो और समायोजनों को बहुत स्पष्ट किया है।
पुरातत्व के साथ मिलकर मानवविज्ञान में यह उदघाटित किया है कि कैसे सांस्कृतिक प्रणालियाँ अपने वातावरण के साथ लम्बे समय से विकसित सामंजस्य यह विरोधाभासो को शामिल करती है। मूलतः लोग अपनी परिस्थिति में वातावरण की चुनौतियों पर काबू पाने और अपने निरन्तर अस्तित्व को बनाए रखने के लिए जीवनशैली स्थापित करते है।
वास्तव में स्थानीय समुदाय आमतौर पर अपने पर्यावरण के बारे में बहुत अच्छी समझ रखते है मानवविज्ञान दृष्टि ने उन कारको की समझ को और अधिक बढ़ा दिया है जो लोगो की भेद्यता का करण बनते है। जहाँ उम्र, लिंग, सामाजिक वर्ग, भाषा, धर्म, जातीयता और अन्य भेद जैसे मामलो को प्रकाश में लाते है। आधारभूत रूप से मानवविज्ञान ने पूछा कि आपदा के सम्भावित शिकार कौन है? और वे कौन सी प्रथाए है जो सुरक्षा के असमान कारणों को जन्म देती है।

सामाजिक प्रभाव का अवधारणात्मक पक्ष

आपदाओं के सामाजिक प्रभाव का एक वैचारिक मॉडल विकसित करना आर्थिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक आदि क्षेत्रो की तुलना में कही अधिक जटिल है (निग, 1996)।
सामाजिक प्रभाव का आधारभूत मापदण्ड भिन्नता और लचीलापन (तरलता) है जहाँ भिन्नता व्यक्तिगत गुण है और तरलता उसका स्वभाव है। भिन्नता या भेद की आधारणा किसी क्षेत्र राष्ट्र की जलवायु संबंधी (लिंडेल और प्रेटर–2003) प्रवृत्ति से कही अधिक है।
संयुक्त राष्ट्र और विश्वबैंक जैसी बहुपक्षीय वित्तपोषक संस्थाएँ विशुद्ध रूप से यह मानती है कि आपदाएँ केवल अपरिहार्य चरम भौतिक घटनाएँ है जिनके तकनीकी समाधान की आवश्यकता है।
इसी तरफ भेद्यता के समर्थक कहते है, कि खतरे प्राकृतिक होते है। आपदायें सामान्यतः नही होती है। ऐसी स्थिति जो समुदाय को असुरक्षित करती है वे आपदायें है। जहाँ किसी समाज की सामाजिक व्यवस्था लाभ या हानी की सापेक्ष स्थिति पर निर्भर करती है।
ब्लैकी एट ऑल–1994 ने दर्शया की कमजोर वर्ग खतरे में है। क्योंकि वह सीमांतता में है जो जीवन को स्थायी आपातकाल बना देती है। यह सीमांतता वर्ग, लिंग, आयु, जातियता और विकलांगता (विसनर–1993) जैसे घटको से बनती है।
जो लोगों के अधिकार सशक्तीकरण या आधारभूत आवश्यकताओं पर उनके नियंत्रण को प्रभावित करती है। कमजोर आबादी विशेष सामाजिक व्यवस्था द्वारा निर्मित होती है। जिसमें राज्य अपने नागरिकों के बीच जोखिम का विवरण असमान रूप से करता है। जिसमें समाज भौतिक पर्यावरण पर अलग–अलग मांग करता है। (कैनन–1994, विस्नर 1993, हेविन–1995) इस परिप्रेक्ष्य में केन्द्र में यह धारणा है कि इतिहास आपदाओं को पहले से ही चित्रित करता है। जहाँ कुछ लोग शक्तिहीन बन जाते है। सामाजिक आदेशो द्वारा (ब्लैकी और अन्य, 1944) जैसे–गरीबी ऐतिहासिक प्रक्रियाओ द्वारा निर्धारित होती है। जो लोगो को संसाधनो तक पहुँचने से वंचित करती है। जबकि भेद्यता ऐतिहासिक प्रक्रियाओं द्वारा इंगति की जाती है जो लोगो को हानिकारक नुकसान के खतरों से निपटने के साधनों से वंचित करती है। जो शारीरिक, आर्थिक, रूप से कमजोर बनाती है।

असुरक्षा के सामाजिक कारक

मानव समूहों में उम्र, आर्थिक स्थिति, सामाजिक सामंजस्य जनसंख्या, लिंग, स्वास्थ्य स्थिति, जाति/जातीयता शिक्षा, आवासीय स्थिति, संस्कृति के कारण भिन्नता होती है। वहीं दूसरी तरफ खतरो से तालमेल बढ़ाने और नुकसान को कम करने पर उससे बचने की क्षमता की लचिलापन रह जाता है। इसलिये यह किसी समूह की खतरे की स्थिति में जनसंख्या पर समूह की प्रतिक्रिया के सन्दर्भ में देखा जाता है।
एंडरसन (1968) का तर्क है कि खतरे के प्रति किसी व्यक्ति की प्रतिक्रिया यादृच्छिक अव्यवस्थित और पूरी तरह से तत्काल नही होती है। बल्कि पीड़ित की संस्कृति में प्रासंगिक सिद्धांत, संज्ञानात्मक, भावनात्मक और मूल्यॉकन में ज्ञान का पालन करती है।
जहाँ खतरा ज्यादा है। वहाँ इसे पर्यावरण का एक पहलू माना जाना चाहिए, जिसके साथ स्थानीय संस्कृतियाँ स्थायी सफलता तक पहले जाएँगी ताकि आपदा की संस्कृति विकसित हो सके।
लचीलेपन को दो स्तरो पर समझा जा सकता हैः

सांस्कृतिक स्तर पर

किसी विनाशकारी घटना के बुरे प्रभावो को कम करने पर नुकसान से बचने के लिए बाहरी एजेंसियों द्वारा प्रदान की जाने वाली विभिन्न सहायता के स्तर पर

सांस्कृतिक स्तर के तंत्रः मौसमी प्रवास, समुदाय विस्थापन, आपदा क्षेत्र के अलावा वैकल्पिक आर्थिक गतिविधियों के लेन–देन इत्यादि सांस्कृतिक तंत्र है जो खतरे को कम करते है और समुदाय की सुरक्षा निश्चित करते है।

बाहरी ऐजेन्सी के तंत्रः सरकारी तथा गैर सरकारी तंत्र द्वारा प्रदान की जाने वाली सहायता, विकास कार्यक्रम, बाह्य तंत्र है जिससे प्रभावित समाज अपनी सुरक्षा कर पाने में सक्षम बनता है।

व्यवहारिक पक्ष

प्राकृतिक आपदाओं के सामाजिक प्रभावों को समझने के लिए विभिन्न दृष्टिकोण अपनाए जा सकते है। वैचारिक स्तर पर भेद्यता और लचीलेपन पैटर्न है। (जोशी और अन्य 2007) पे सामाजिक प्रभावों के आश्रित चर है।
सामाजिक प्रभावों के स्वतंत्र चर भी है। जिसकों चिन्हित करके समुदाय की भेद्यता और लचीलेपन पर प्रभाव को देखा जा सकता है जहाँ स्वतंत्र चर के रूप में सामाजिक–जनसंख्यिकीय, सामाजिक–आर्थिकी, सामाजिक–राजनीतिक, सामाजिक–मनोवैज्ञानिक, सामाजिक–सांस्कृतिक, सामाजिक–संरचनात्मक इत्यादि चरों को जानना समझना अति महत्वपूर्ण है क्योंकि इन्हीं से राहत एजेन्सियों को पूर्वानुमान मूल्य मिलता है और प्रतिकूल परिणामों को रोकने के लिए अकस्मिक योजनाएँ विकसित करने के लिए बेहतर स्थिति में होंगे (लिंडिल और प्रेटर, 2003)।
उपरोक्त स्वतंत्रचरों में सामाजिक जनसंख्यिकीय और सामाजिक आर्थिकी पर महत्वपूर्ण शोधकार्य किये गये है जिसे संक्षिप्त रूप में निम्न प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है।

सामाजिक जनसंख्यिकीय

किसी जनसंख्या का यह पहलू लिंग, आयु, धर्म, विवाह इत्यादि पर केन्द्रित होता है जहाँ कई अध्ययन इससे सम्बन्धित है जैसे लिंग के परिप्रेक्ष्य में 1998 में बंग्लादेश में आयी बाढ़ के दौरान राहत शिविरों में किशोरियों की समस्याओं पर (रसीद और माट्रकार्ड, 2000) अध्ययन किया गया जहाँ पाया गया कि लड़किया अजनबियों के साथ रही, खुले में शौच स्नान, निद्रा जैसी दैनिक गतिविधियों में उन्हें बहुत समस्या हुई। पश्चिमी इथोपिया में एक अध्ययन में पाया गया कि शरणार्थी शिविरों में रहने वाले युवा सुडानी पुरूष निरन्तर भोजन आपूर्ति के बजाय भूखे रहना पसन्द करते है क्योंकि वे पके भोजन के आदी नही थे। (डब्ल्यू. एच. ओ. 2002)।
उम्र के सन्दर्भ में भी अध्ययन किये गये जहाँ देखा गया कि यह कारक आबादी को असुरक्षित बनाता है हिन्द महासागर के सुनामी के प्रभाव पर शोधकर्ताओं ने देखा की राहत वितरण के दौरान

बुजुर्गों की अनदेखी की गयी। उन्हें युवाओं द्वारा जबरजस्ती रास्ते से हटा दिया जाता था जो डार्विन के 'योग्यता की उत्तर जिविता के अनुरूप है।

धर्म के परिप्रेक्ष्य में यह देखा गया कि धर्म भी भेद्यता में योगदान करता है जहाँ फिजी दीप समूह में किये गये ऐसे ही एक अध्ययन में तीन धार्मिक समूहों की संवेदन शीलता पर निगेल 1997 में अध्ययन किया जहाँ पाया कि वहाँ तीन धर्म के लोग रहते थे जिसमें हिन्दू मुस्लिम और इसाई थे। हिन्दू और मुस्लिम लोगो ने आपदा का अधिक अनुभव किया क्योंकि मन्दिरों और मस्जिदों ने कोई सहायता नही की। जबकि चर्च आर्थिक रूप से मजबूत थे इसलिए इसाई लोग कम तनाव का अनुभव किये (गिलार्ड और पैटन, 1999)। इसलिए भारतीय सन्दर्भों में इसे देखा जाना चाहिए जो विभिन्न धार्मिक समूहों की भेद्यता को जानने में महत्वपूर्ण कारक होगा।

विवाह के सन्दर्भ में बाग्लादेश बाढ़ पर ऐसे ही एक अध्ययन में देखा गया कि आपदा के दौरान नवविवाहित लड़कियों में परित्याग का डर ज्यादा था, जहाँ दहेज प्रथा है यदि लड़की का परिवार दहेज देने में असमर्थ होता है तो लड़के के द्वारा लड़की त्याग दी जाती थी। आपदा के समय काफी नुकसान होता था जिससे विवाह में दहेज देना असंभव हो जाता था (रसीद और माइकॉड, 2000)। इसलिए लड़कियों में परित्याग की भावना रहती है।

सामाजिक–आर्थिक

प्रत्येक समाज पर आने वाला खतरा उसकी आर्थिक क्षति का कारण बनता है इसमें प्रत्यक्ष क्षति दिखायी पड़ती है चल–अचल दोनो सम्पत्तियों कि (वाशिनगटन, 1999) जिसे मरम्मत या प्रतिस्थापना से पूरा किया जाता है। यदि ऐसा नही किया जा सकता तो यह लोगों के उपभोग प्रतिरूप को प्रभावित करेगा जो जीवन की गुणवत्ता प्रभावित करेंगा। (लिंडेल और प्रेटा, 2003)। जैसे घर नष्ट हुआ और नया घर बना, नया घर पुराने से अच्छा नही है तो यह निवेश और उत्पादकता को प्रभावित करेगा। समाजों में असमानता पाई जाती है जिसमें आपदा का प्रभाव गरीब पर ज्यादा होता है लेकिन पूरी तरह सही नही है किन्तु आपदा में नवगरीब लोगो को पैदा करने की क्षमता होती है (कैनन, 1994)। इस प्रकार भेद्यता एक सापेक्ष और विशिष्ट शब्द है जो किसी व्यक्ति या समूह को एक गुण और चरित्र के कारण असुरक्षित नही कहा जा सकता यह कई लक्षणों का संयोग है जो सामाजिक आर्थिकी का परिणाम है।

निर्ष्कष

प्रस्तुत शोधपत्र आपदा और आजीविका के प्रभाव सम्बन्धों के कारको का वैज्ञानिक विश्लेषण है जहाँ आपदा प्राकृतिक घटना के रूप में मानवजीवन में होने वाली क्षति है वही आजीविका मानव जीवन की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने वाले कार्य–उद्योग की परिभाषिक शब्दावली है।

मानवविज्ञान में आपदा से सम्बन्धित अध्ययन नगण्य रहे है। क्योंकि इस विषय का झुकाव जनजातीय समाज, ग्रामीण एवं कृषक समाजो पर अधिक रहा है किन्तु 1950 के बाद बहुत तेजी से इस तरफ विद्वानो का ध्यान आकर्षित हुआ है और अध्ययन के परिणाम से नवीन मानवशास्त्रीय विषय वस्तु का सृजन हो रहा है। आपदा अध्ययन के लिए मानवशास्त्रीयों ने मुख्यतः दो दृष्टिकोणो को आधार बनाया है जिसे होमियोस्टैटिक और विकासात्मक दृष्टिकोण कहा जाता है जहाँ समाज द्वारा आपदा से निपटने की खुद की क्षमता होमियोस्टैटिक है और बाहरी एजेंसियों द्वारा आपदा के प्रभाव में सकारात्मक परिर्वतन करना विकासात्मक दृष्टिकोण है।

सामाजिक आपदा का अध्ययन और मानवशास्त्रीय दृष्टि के विकास के रूप में पद देखा गया कि 1980 तक आपदा को केवल उसके भौतिक रूप तक ही देखा जाता था जो अनुमान और चेतावनी तक ही सीमित था किन्तु इसमें क्षेत्रकार्य परंपरा, शारीरिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओ की पहचान के अध्ययन को जोड़ने से आपदा को ऐतिहासिकता एवं मानवीय संवेदना के स्तर पर समझने के मार्ग प्रशस्त हुये है।

आपदा के सामाजिक प्रभाव का अवधारणात्मक स्वरूप भिन्नता और तरलता की अवधारणा को जन्म देता है जहाँ भिन्नता व्यक्तिगत गुण है और तरलता स्वभाव, दोनो के समर्थक अथवा वैचारिक मॉडल विकसित करते है और मानव समूह में उम्र, लिंग, जाति, स्वास्थ्य, आर्थिक दशा, शिक्षा इत्यादि को भिन्नता के रूप में वही खतरो से तालमेल बिठाना, खतरों को कम करना, खतरों से बचने की क्षमता लचीलापन है।

आपदा के अध्ययन में इसमें प्रभाव के व्यवहारिक पक्ष को सामाजिक–जनसंख्याकी, सामाजिक आर्थिकी के रूप में विद्वानो द्वारा देखा गया है जहाँ जनसंख्याकी में समाज के लोगो की उम्र, लिंग, जाति, धर्म, विवाह पर प्रभाव तथा आर्थिकी प्रणाली पर पड़ने वाले प्रभाव का निरूपण किया जाता है।

इस प्रकार मानवविज्ञान में आजीविका और आपदा का अध्ययन एक नयी शाखा को जन्म देता है जो विषय के विकास का उत्तर आधुनिक चरण है और मानव जाति के अध्ययन का एक नया आयाम।

सन्दर्भ

1. ओल्डम, आर. डी. (1917) ''दि डिपेस्ट बोरिंग ऐट लखनऊ,'' रिकार्ड ऑफ ज्योलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, पृष्ठ 78।
2. ओल्डम, आर. डी. (1970) दि स्ट्रक्चर ऑफ हिमालय एण्ड गंगोटिक प्लेन,'' मेमोरीज ऑफ ज्यालोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, कलकत्ता, वाल्यूम 13, चैप्टर 2, पृष्ठ 78।
3. कृष्णा एम. एस. (1970) ''ज्योलॉजी ऑफ इण्डिया एण्ड वर्मा,'' मद्रास पृष्ठ 305 एवं 573।
4. गुप्त, डी. पी. (1984) ''बलिया और उसके निवासी',' बलिया गौरव ग्रन्थ माला, बलिया, पृष्ठ 22।
5. पाठक, जी. के. के (1993) ''बलिया जनपद के सेवा केन्द्र एवं ग्रामीण विकास में उनका योगदान, ''अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद।
6. पाठक, जी. के. के (1985) ''अधिवासों के नामकरण की विधाएँ'' अभ्यन्तर, वेषणात्मक त्रैमासिक पत्रिका लखनऊ, अंक 1 सं. 3 पृष्ठ 701।
7. पाठक, जी. के. के (1985) ''खैराडीह–बुद्धकोलीन नगर,'' अभ्यन्तर, वेषणात्मक त्रैमासिक पत्रिका, लखनऊ, अंक 1 सं. 2, पृष्ठ 92।
8. पाठक, जी. के. (1985) ''बलिया से बाढ़ नियंत्रण की समस्याएँ एवं समाधान, भगीरथ, केन्द्रीय जल समस्या आयोग, पृष्ठ 31–35।
9. बुटाई एस. (1916) ''दि ओरीजन ऑफ दि हिमालय'' सर्वे ऑफ इण्डिया पब्लिकेशन, पृष्ठ 04।
10. मेहरोत्रा, सी. एल. (1972) ''स्वायल्स ऑफ इण्डिया'' इटीटेड बाइ अलेजेण्डर टी. एम. 8 आई नई दिल्ली, पृष्ठ 288–289, 291–295।
11. राय, चौधरी, एस. पी. (1961) 'स्वायल्स ऑफ इण्डिया,'' रिव्यू सीरिज, न्यू दिल्ली, पृष्ठ 01।
12. लाल, सी. पी. (1981) ''बलिया जनपद का भू–आर्थिक अध्ययन,'' पीएचडी शोध प्रबन्ध अप्रकाशित गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर।
13. वाडिया, डी.एन., (1976) ज्योलॉजी ऑफ इण्डिया, मद्रास, पृष्ठ 364–415।

14. सिह. एस सी., (1973) ''चेन्जेज इन दि कोर्स ऑफ रिवर्स एण्ड देयर इफेक्ट आन अर्बन स्टलमेंट इन दि मिडिल प्लेन,'' एन. जी. एस. आई, वाराणसी।
15. सिंह, आर. बी. (1975) ''राजपूत क्लान सेटलमेट इन वाराणसी, ''ज्योग्राफिकल जनरल ऑफ इन्डिया वाराणसी, पृष्ठ 32–34।
16. डिस्ट्रीक्ट गजेटियर, जनपद बलिया, पृष्ट 5–6।
17. खत्री, पी. (2017) स्थायी आजीविका, वैश्वीकरण और प्राकृतिक आपदाओं के प्रति संवेदनशीलता पर एक विमर्श, वर्ल्ड फोकस, बी. 49 जोशी कालोनी आई0पी0 एक्सटेशन, दिल्ली, pp. 72.78.
18. हेमन्त, आर. (1991) 'नदी बंधी', जय प्रभा अध्ययन एवं अनुसन्धान केन्द्र मधुपुर, देवघर, बिहार।
19. दयाराम, (2005) 'बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में खाद्य सुरक्षा', वसुन्धरा वर्ष–14 सं. 3।
20. मिश्र, दिनेश कुमार, (1994) बंदिनी महानन्दा समता प्रकाशन प्रा.लि. पूर्वी लोहानीपुर पटना, बिहार।
21. 21ण पाठक, यू (2008)–'आपदा–प्रबन्धन, अग्नि प्रकाशन, नई दिल्ली पृ. 11।
22. द्विवेदी, डी0 (2012), 'आपदा प्रबन्धन, अम्बेडकर जनवाचन केन्द्र, दिल्ली, पृ. 11।
23. गौतम, वी., (2018) मानव जीवन और प्राकृतिक आपदाए, सारिका प्रकाशन, दिल्ली (2018), पृ. 13।
24. द्विवेदी डी., (2012) आपदा प्रबन्धन, अम्बेडकर जनवाचन केन्द्र, दिल्ली पृ. 9।
25. पाठक, यू. (2008) आपदा प्रबन्धन अग्नि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० –82।
26. गर्ग, सी. एल. (2011) 'प्राकृतिक आपदाएं और विज्ञान', अभिव्यक्ति प्रकाशन, नई दिल्ली पृ.–171।
27. द्विवेदी, देव व्रत (2012)–आपदा प्रबन्धन, अम्बेडकर जनवाचन केन्द्र, दिल्ली, पृ. 23।
28. गर्ग, सी. एल. (2011), प्राकृतिक आपदाएं और विज्ञान', अभिव्यक्ति प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.– 174।
29. गर्ग, एन. के. (2010), पर्यावरण संरक्षण, आयुष पब्लिशिंग हाउस गाजियाबाद पृ. 188।
30. जाट, बी. सी. (2010), 'आपदा प्रबन्धन, मंथन पब्लिकेशन्स, जयपुर (2010), पृ. 196।
31. शर्मा, के. और सिंघल वी. (2008), बदलता पर्यावरण, लोकप्रिय प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 123।
32. द्विवेदी, डी. (2012), आपदा प्रबन्धन, अम्बेडकर जनवाचन केन्द्र, दिल्ली, पृ. 9।
33. 2 गर्ग, सी. एल. (2011), प्राकृतिक आपदाएं और विज्ञान', अभिव्यक्ति प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.– 10।
34. द्विवेदी, डी. (2012), आपदा प्रबन्धन, अम्बेडकर जनवाचन केन्द्र, नई दिल्ली, पृ. 11।
35. जाट, बी. सी. (2010), 'आपदा प्रबन्धन', मंथन पब्लिकेशन, जयपुर, पृ. 2।
36. गुर्जर आर० के० एवं जाट, बी. सी. (2001), प्रांकृतिक आपदाये सुरभि पब्लिकेशन जयपुर पृ. 2।
37. कमल एम. पी. (2006), प्राकृतिक महाविनाश', मित्तल बुक एजेन्सी नई दिल्ली, पृ. 20।
38. गौतम, वी., (2018), 'मानव जीवन और प्राकृतिक आपदाएं, सारिका प्रकाशन दिल्ली (2018) पृ. 15।
39. शर्मा, एस. (2011) 'पर्यावरणीय आपदाएं', ब्रज पब्लिशर्स, जयपुर, पृ. 9।
40. गर्ग, सी. एल. (2011) प्राकृतिक आपदाएं और विज्ञान, अभिव्यक्ति प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ 174।
41. आपदा प्रबन्धन योजना (2006) जनपद गोरखपुर, पृ. 25.
42. आपदा प्रबन्धन योजना (2008) जनपद गोण्डा, पृ. 24–40
43. अरूणाचलम, एन. बी. (2004), ए.बी.सी.डी. ऑफ नेचुरल डिजास्टर एण्ड इट्स इफैकट ऑन इटैजेंसिया प्रोसिडिग्स वर्ल्ड ऑन नेचुरल डिजास्टर मिटिगेशन' खण्ड 1 इस्टीटयूट आम्फ इंजीनियर्स, इण्डिया, कोलकाता।
44. एशिया डिजास्टर प्रिपेयर्डनेस सेन्टर द्वारा प्रयोजित एक अध्ययन (2002) 'बाढ़ की विभीषिका : महिलाओं पर प्रभाव, वसुन्धरा, वर्ष 13, संख्या–3 पृ. 17–19।
45. बाढ़ नियंत्रण और सहायता–पब्लिकेशन ब्यूरो (1957) अधीक्षक–राजकीय मुद्रणालय एवं लेखन सामग्री, उत्तर प्रदेश भारत, एक अनूठी योजना पृ. 7–8।
46. बाद प्रबंधन हेतु मार्ग निर्देशिका, (2008) राहत आयुक्त संगठन एवं जी.ओ. आई. यू.एन.डी.पी. आपदा प्रबंधन कार्यक्रम पृ. 13–15।
47. बाढ़ आकलन प्रतिवेदन मानसूनकाल (2008) भारत सरकार, केन्द्रीय जल आयोग मध्य गंगा मण्डल–प्रथम, लखनऊ उ. प्र.।
48. बाढ़ मैनुअल, (2008) जिला प्रशासन के लिये मार्गदर्शिका राहत आयुक्त संगठन एवं जी.ओ.आई. यू.एन.डी.पी. आपदा प्रबन्धन कार्यक्रम।
49. बी. मोनट्ज एण्ड रोबिन, (1998) नेचुरल हेजर्ड्स, एक्सप्लेनेशन्स एण्ड इटीग्रेशन गुलफोर्ड प्रेस, गुलफोर्ड।
50. चक्रवती. पी जी धर. (2006) भारत में आपदा प्रबंधन सरचना योजना, मई, वर्ष 50. अक 2 पृ. 5–9।
51. चक्रवर्ती, मानस एवं रुचिका (अगस्त, 2014) 'आपदा प्रबन्धन समय की मांग वर्ल्ड फोकस, वर्ष 4. अंक–29, पृ. 18–21।
52. चौहान, तेज सिंह, (1997) 'भारत का भौतिक आर्थिक, सामाजिक, एवं प्रादेशिक विकास, विज्ञान प्रकाशन, भाग–2. जोधपुर पृ. 175–176।
53. दयाराम (2005) बाढ़ग्रस्त क्षेत्र में खादय सुरक्षा वसुन्धरा वर्ष–14. सं.–3.
54. डोगरा, भारत, (1996) पूर्वी उ.प्र में बाढ़ जलजमाव और आजीविका का सकंट सहयोग, गोरखपुर।
55. डोगरा, भारत. (2007) त्रासदी की अनदेखी दैनिक जागरण, गोरखपुर पृ. 10.